सम्बन्धमें सदासे कहते ही आ रहे हैं, किन्तु उनका यह कहना आजतक पूरा नहीं हुआ। अबतकके उनके सब वचनोंको मिलाकर या अलग अलग कर, कोई परमात्माके वास्तविक स्वरूपका वर्णन करना चाहे, तो उसके द्वारा भी पूरा वर्णन नहीं हो सकता। अधूरा ही रह जाता है। इस विवेचनमें यह तो निश्चय हो गया कि, भगवान् हैं अवश्य, उनके होनेमें रत्ती-भर भी शङ्का नहीं है, यह दृढ़ निश्चय है। अतएव जो आदमी भगवान्‌को अपने मनसे जैसा समझकर साधन कर रहे हैं, उसमें परिवर्तनकी कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु सुधार कर लेना चाहिये। वास्तवमें साधन करनेवालोंमें कोई भी भूलमें नहीं हैं या एक रकम सभी भूलमें हैं। जो परमात्माके लिये साधन करता है, वह उसीके मार्गपर चलता है, इसलिये कोई भूलमें नहीं है और भूलमें इसलिये हैं कि, जिस किसी एक वस्तुको साध्य या ध्येय मानकर, वे उसकी प्राप्तिका साधन करते हैं उनके उस साध्य या ध्येयसे वास्तविक परमात्माका स्वरूप अत्यन्त विलक्षण है। जो जानने, मानने और साधन करनेमें आता है, वह तो असली ध्येय परमात्माको बतानेवाला सांकेतिक लक्ष्य है। इसलिये जहांतक उस असलीकी प्राप्ति नहीं होती, वहांतक सभी भूलमें हैं ऐसा कहा गया है। परन्तु इससे यह नहीं मानना चाहिये कि, पहले भूलको ठीक करके फिर साधन करेंगे। ठीक तो कोई कर ही नहीं सकता, यथार्थ प्राप्तिके बाद आप ही ठीक हो जाता है। इससे पहले जो होता है, सो

अनुमान होता है और उस अनुमानसे जो कुछ किया जाता है वही उसकी प्राप्तिका ठीक उपाय है। जैसे एक आदमी द्वितीयाके चन्द्रमाको देख चुका है, वह दूसरे न देखनेवालोंको इशारेसे बतलाता है कि, तूं मेरी नजरसे देख उस वृक्षसे चार अंगुल ऊंचा चन्द्रमा है। इस कथनसे उसका लक्ष्य वृक्षकी ओरसे होकर चन्द्रमा तक चला जाता है और वह चन्द्रमाको देख लेता है। वास्तवमें न तो वह उसकी आंखमें घुसकर ही देखता है और न चन्द्रमा उस वृक्षसे चार अंगुल ऊंचा ही है और न चन्द्र-मण्डल जितना छोटा वह देखता है उतना छोटा ही है। परन्तु लक्ष्य बंध जानेसे वह उसे देख लेता है। कोई कोई द्वितीयाके चन्द्रमाका लक्ष्य करानेके लिये सरपतसे बतलाते हैं, कोई इससे भी अधिक लक्ष्य करानेके लिये चूनेसे लकीर खींचकर या चित्र बनाकर उसे दिखाते हैं, परन्तु वास्तवमें चन्द्रमाके वास्तविक स्वरूपसे इनकी कोई समता नहीं। न तो चन्द्रमाका इनमें प्रकाश ही है, न यह उतने बड़े ही हैं और न इनमें चन्द्रमाके अन्य गुण ही हैं। इसीप्रकार लक्ष्यके द्वारा देखनेपर भगवान् देखे या जाने जा सकते हैं। वास्तवमें लक्ष्य और उनके असली स्वरूपमें वैसा ही अन्तर है कि जैसा चन्द्रमा और उसके लक्ष्यमें। चन्द्रमाका स्वरूप तो शायद कोई योगी बता भी सकता है, परन्तु भगवान्का स्वरूप कोई बता नहीं सकता, क्योंकि यह वाणीका विषय नहीं है। वह तो जब प्राप्त होगा, तभी मालूम होगा। जिसको प्राप्त होगा वह भी उसे समझा नहीं

सकेगा । यह तो असली स्वरूपकी बात हुई । अब यह बतलाना है कि साधकके लिये वह ध्येय या लक्ष्य किस प्रकारका होना चाहिये और वह किस प्रकार समझा जा सकता है । इस विषयमें महात्माओंसे सुनकर और शास्त्रोंको सुन और देखकर, मेरे अनुभवमें जो बातें निश्चयात्मक रूपसे जची, वही बतलाई जाती है। किसीकी इच्छा हो तो वह उसे काममें ला सकता है।

परमात्माके असली स्वरूपका ध्यान तो वास्तवमें बन नहीं सकता । जब तक नेत्रोंसे, मनसे और बुद्धिसे परमात्माके स्वरूपका अनुभव न हो जाय, तब तक जो ध्यान किया जाता है, वह अनुमानसे ही होता है । महात्माओंके द्वारा सुनकर, शास्त्रोंमें पढ़कर, चित्रादि देखकर साधन करनेसे साधकको परमात्माके दर्शन हो सकते हैं । पहले यह बात कही जा चुकी है कि, जो परमात्माका जिस प्रकार ध्यान कर रहे हैं, वे वैसा ही करते रहें, परिवर्तनकी आवश्यकता नहीं । कुछ सुधारकी आवश्यकता अवश्य है ।

ध्यान कैसे करना चाहिये

कुछ लोग निराकार शुद्ध ब्रह्मका ध्यान करते हैं, कुछ साकार दो भुजावाले और कुछ चतुर्भुजधारी भगवान् विष्णुका ध्यान करते हैं, वास्तवमें भगवान् विष्णु राम और कृष्ण जैसे एक हैं, वैसे ही देवी, शिव, गणेश और सूर्य भी उनसे कोई भिन्न नहीं । ऐसा अनुमान होता है कि लोगोंकी भिन्न भिन्न धारणाके अनुसार एक ही परमात्माका निरूपण करनेके लिये, श्रीवेदव्यासजीने अठारह पुराणोंकी रचना की है, जिस देवके

नामसे जो पुराण बना, उसमें उसीको सर्वोपरि, सृष्टि कर्ता, सर्वगुणसम्पन्न, ईश्वर बतलाया गया। वास्तवमें नाम रूपके भेदसे सबमें उस एक ही परमात्माकी बात कही गयी है। नाम रूपकी भावना साधक अपनी इच्छानुसार कर सकते हैं, यदि कोई एक स्तम्भको ही परमात्मा मानकर उसका ध्यान करे तो वह भी परमात्माका ही ध्यान होता है, लक्ष्यमें ईश्वरका पूर्ण भाव होना चाहिये।

साकार और निराकारके ध्यानमें साकारकी अपेक्षा निराकारका ध्यान कुछ कठिन है, फल दोनोंका एक ही है, केवल साधनमें भेद है। अतएव अपनी अपनी प्रीतिके अनुसार साधक निराकार या साकारका ध्यान कर सकते हैं।

निराकारके उपासक साकारके भावको साथमें न रखकर केवल निराकारका ही ध्यान करें, तो भी कोई आपत्ति नहीं, परन्तु साकारका तत्त्व समझकर परमात्माको सर्वदेशी, विश्वरूप मानते हुए, निराकारका ध्यान करें तो फल शीघ्र होता है। साकारका तत्त्व न समझनेसे कुछ विलम्बसे सफलता होती है।

साकारके उपासकको निराकार, व्यापक ब्रह्मका तत्त्व जाननेकी आवश्यकता है, इसीसे वह सुगमतापूर्वक शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है। भगवान्‌ने गीतामें प्रभाव समझकर ध्यान करनेकी ही बड़ाई की है।

मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः॥

(अ० १२। २)

हे अर्जुन! मेरेमें मनको एकाग्रकरके निरन्तर मेरे भजन, ध्यानमें लगे हुए* जो भक्तजन, अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धासे युक्त हुए, मुझ सगुणरूप परमेश्वरको भजते हैं, वे मेरेको योगियोंमें भी अति उत्तम योगी मान्य हैं अर्थात् उनको मैं अति श्रेष्ठ मानता हूं।

वास्तवमें निराकारके प्रभावको जानकर जो साकारका ध्यान किया जाता है, वही भगवत्‌की शीघ्र प्राप्तिके लिये उत्तम और सुलभ साधन है। परन्तु परमात्माका असली स्वरूप इन दोनोंसे ही विलक्षण है कि जिसका ध्यान नहीं किया जा सकता। निराकारके ध्यान करनेकी कई युक्तियां हैं। जिसको जो सुगम मालूम हो, वह उसीका अभ्यास करे। सबका फल एकही है। कुछ युक्तियां यहांपर बतलाई जाती हैं।

साधकको श्रीगीताकी अ० ६।११ से १३ के अनुसार, एकान्त स्थानमें स्वस्तिक या सिद्धासनसे बैठकर, नेत्रोंकी दृष्टिको नासिकाके अग्र भागपर रखकर या आंखें बन्दकर (अपनी इच्छानुसार) नियमपूर्वक प्रतिदिन कमसे कम तीन घण्टेका समय ध्यानके अभ्यासमें बिताना चाहिये। तीन घण्टे कोई न कर सके तो दो करे, दो नहीं तो एक घण्टे अवश्य ध्यान करना चाहिये। शुरू शुरूमें मन न लगे तो १५—२० मिनिटसे आरम्भ कर धीरे धीरे ध्यानका समय बढ़ाता रहे। बहुत शीघ्र प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले साधकोंके लिये तीन घण्टेका अभ्यास आवश्यक

---

*अर्थात् गीता अ० ११।५५ में लिखे हुए प्रकारसे निरन्तर मेरेमें लगे हुए।

है। ध्यानमें नाम जपसे बड़ी सहायता मिलती है। ईश्वरके सभी नाम समान हैं, परन्तु निराकारकी उपासनामें ॐकार प्रधान है। योगदर्शनमें भी महर्षि पतञ्जलिने कहा है:—

'तस्य वाचकःप्रणवः।', 'तज्जपस्तदर्थभावनम्।'

(योगदर्शन स० पाद १।२७।२८)

उसका वाचक प्रणव (ॐ) है उस प्रणवका जप करना और उसके अर्थ परमात्माका ध्यान करना चाहिये।

इन सूत्रोंका मूल आधार-"ईश्वरप्रणिधानाद्वा।" (योग० १।२३) है। इसमें भगवान्की शरण होनेको और उन दोनोंमें से पहलेमें भगवान्का नाम बतलाकर, दूसरेमें नाम जप और स्वरूपका ध्यान करनेकी बात कही गई है।

महर्षि पतञ्जलिके परमेश्वरके स्वरूप सम्बन्धी अन्य विचारों-के सम्बन्धमें, मुझे यहांपर कुछ नहीं कहना है। यहांपर मेरा अभिप्राय केवल यही है कि, ध्यानका लक्ष्य ठीक करनेके लिये पतञ्जलिजीके कथनानुसार स्वरूपका ध्यान करते हुए नामका जप करना चाहिये। ॐ की जगह कोई 'आनन्दमय' या 'विज्ञानानन्दघन, ब्रह्मका जप करे, तो भी कोई आपत्ति नहीं है। भेद नामोंमें है, फलमें कोई फरक नहीं है।

जप सबसे उत्तम वह होता है, जो मनसे होता है, जिसमें जीभ हिलाने और ओष्ठसे उच्चारण करनेकी कोई आवश्यकता नहीं होती। ऐसे जपमें ध्यान और जप दोनों साथ ही हो सकते हैं। अन्तःकरणके चार पदार्थोंमेंसे मन और बुद्धि दो प्रधान हैं,

बुद्धिसे पहले परमात्माका स्वरूप निश्चयकरके उसमें बुद्धि स्थिर कर ले, फिर मनसे उसी सर्वत्र परिपूर्ण आनन्दमयकी पुनः पुनः आवृत्ति करता रहे। यह जप भी है और ध्यान भी। वास्तवमें आनन्दमयके जप और ध्यानमें कोई खास अन्तर नहीं है। दोनों काम एक साथ किये जा सकते हैं। दूसरी युक्ति श्वासके द्वारा जप करनेकी है। श्वासोंके आते और जाते समय कण्ठसे नामका जप करे, जीभ और ओष्ठको बन्दकर श्वासके साथ नामकी आवृत्ति करता रहे, यही प्राणजप है, इसको प्राणद्वारा उपासना कहते हैं। यह जप भी उच्च श्रेणीका है। यह न हो सके तो मनमें ध्यान करे और जीभसे उच्चारण करे परन्तु मेरी समझसे इनमें साधकके लिये अधिक सुगम और लाभप्रद श्वासके द्वारा किया जानेवाला जप है। यह तो जपकी बात हुई, असलमें जप तो निराकार और साकार दोनों प्रकारके ध्यानमें ही होना चाहिये। अब निराकारके ध्यानके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है—

एकान्त स्थानमें स्थिर आसनसे बैठकर, एकाग्र चित्तसे इस-प्रकार अभ्यास करे। जो कोई भी वस्तु इन्द्रिय और मनसे प्रतीत हो, उसीको कल्पित समझकर उसका त्याग करता रहे। जो कुछ प्रतीत होता है सो है नहीं। स्थूल शरीर, ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि आदि कुछ भी नहीं हैं, इसप्रकार सबका अभाव करते करते, अभाव करनेवाले पुरुषकी वह वृत्ति—(जिसे ज्ञान, विवेक और प्रत्यय भी कहते हैं, यह सब शुद्ध बुद्धिके कार्य हैं,

यहांपर बुद्धि ही इनका अधिकरण है, जिसके द्वारा परमात्माके स्वरूपका मनन होता है और प्रतीत होनेवाली प्रत्येक वस्तुमें यह नहीं है, ऐसा अभाव हो जाता है, इसीको वेदोंमें 'नेति नेति' ऐसा भी नहीं ऐसा भी नहीं कहा है।) भी शान्त हो जाती है। उस वृत्तिका त्याग करना नहीं पड़ता, स्वयमेव हो जाता है। त्यागकरनेमें तो त्याग करनेवाला, त्याज्य वस्तु और त्यागकी त्रिपुटी आ जाती है। इसलिये त्याग करना नहीं बनता, हो जाता है। जैसे, इन्धनके अभावमें अग्नि स्वयमेव शान्त हो जाती है, इसीप्रकार विषयोंके सर्वथा अभावसे वृत्तियां भी सर्वथा शान्त होजाती हैं। शेषमें जो बच रहता है, वही परमात्माका स्वरूप है। इसीको निर्बीज समाधि कहते हैं

'तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः।'
(योग० १।५१)

यहांपर यह शङ्का होती है कि, त्यागके बाद त्यागी बचता है, वह अल्प है, परमात्मा महान् है इसलिये बच रहनेवालेको ही परमात्माका स्वरूप कैसे कहा जाता है। बात ठीक है परन्तु वह अल्प वहींतक है, जबतक वह एक सीमाबद्धस्थानमें अपनेको मानकर, बाकीकी सब जगह दूसरोंसे भरी हुई समझता है। दूसरी सब वस्तुओंका अभाव होजानेपर, शेषमें, बचाहुआ केवल एक तत्त्व ही 'परमात्मतत्त्व' है। संसारको जड़से उखाड़कर फेंक देनेपर, परमात्मा आपही रह जाते हैं। उपाधियोंका नाश होते ही सारा भेद मिटकर अपार एकरूप

परमात्माका स्वरूप रह जाता है, वही सब जगह परिपूर्ण और सभी देशकालमें व्याप्त है। वास्तवमें देशकाल भी उसमें कल्पित ही है। वह तो एक ही पदार्थ है, जो अपने ही आपमें स्थित है जो अनिर्वचनीय है, अचिन्त्य है। जब चिन्तनका सर्वथा त्याग होजाता है, तभी बस अचिन्त्य ब्रह्मका खजाना निकल पड़ता है, साधक उसमें जाकर मिल जाता है। जब-तक अज्ञानकी आड़से दूसरे पदार्थ भरे हुए थे, तबतक वह खजाना अदृश्य था, अज्ञान मिटनेपर एक ही वस्तु रह जाती है, तब उसमें मिल जाना याने सम्पूर्ण वृत्तियोंका शान्त होकर, एक ही वस्तुका रह जाना निश्चित है।

महाकाशसे घटाकाश तभीतक अलग है, जबतक घड़ा फूट नहीं जाता। घड़ेका फूटना ही अज्ञानका नाश होना है, परन्तु यह दृष्टान्त भी पूरा नहीं घटता। कारण घड़ा फूटनेपर तो उसके टूटे हुए टुकड़े आकाशका कुछ अंश रोक भी लेते हैं, परन्तु यहां अज्ञानरूपी घड़ेके नाश हो जानेपर, ज्ञानका जरा सा अंश रोकनेके लिये भी कोई पदार्थ नहीं बच रहता। भूल मिटते ही जगत्‌का सर्वथा अभाव हो जाता है। फिर जो बच रहता है, वही ब्रह्म है। उदाहरणार्थ जैसे, घटाकाश जीव है। महाकाश परमात्मा है। उपाधिरूपी घट नष्ट हो जानेपर, दोनों एकरूप हो जाते हैं। एकरूप तो पहले भी थे, परन्तु उपाधिभेदसे भेद प्रतीत होता था।

वास्तवमें आकाशका दृष्टान्त परमात्माके लिये सर्वदेशी

नहीं है। आकाश जड़ है, परमात्मा जड़ नहीं; आकाश दृश्य है, परमात्मा दृश्य नहीं है, आकाश विकारी है, परमात्मा विकारशून्य है, आकाश अनित्य है महाप्रलयमें इसका नाश होता है, परमात्मा नित्य है, आकाश शून्य है उसमें सब कुछ समाता है, परमात्मा घन है उसमें दूसरेका समाना संभव नहीं। आकाशसे परमात्मा अत्यन्त विलक्षण है। ब्रह्मके एक अंशमें माया है, जिसे अव्याकृत प्रकृति कहते हैं, उसके एक अंशमें महत्तत्त्व (समष्टि बुद्धि) है, जिस बुद्धिसे सबकी बुद्धि होती है। उस बुद्धिके एक अंशमें अहंकार है जिससे सब व्याप्त हैं, उस अहंकारके एक अंशमें आकाश, आकाशमें वायु, वायुमें अग्नि, अग्निमें जल और जलमें पृथिवी। इसप्रकार प्रक्रियासे यह सिद्ध होता है कि, समस्त ब्रह्माण्ड मायाके एक अंशमें है और वह माया परमात्माके एक अंशमें है, इस न्यायसे आकाश तो परमात्माकी तुलनामें अत्यन्त ही अल्प है परन्तु इस अल्पताका पता परमात्माके जानने पर लगता है। जैसे, एक आदमी स्वप्न देखता है, स्वप्नमें उसे दिशा, काल, आकाश, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात आदि समस्त पदार्थ भासते हैं, बड़ा विस्तार दीख पड़ता है, परन्तु आंख खुलते ही उस सारी सृष्टिका अत्यन्त अभाव हो जाता है, फिर पता लगता है कि वह सृष्टि तो अपने ही संकल्पसे अपने ही अन्तर्गत थी, जो मेरे अन्दर थी, वह अवश्य ही मुझसे छोटी वस्तु थी, मैं तो उससे बड़ा हूं। वास्तवमें तो थी ही नहीं, केवल कल्पना ही थी, परन्तु

यदि थी भी तो भी अत्यन्त अल्प थी, मेरे एक अंशमें थी मेरा ही संकल्प था अतएव मुझसे कोई भिन्न वस्तु नहीं थी। यह ज्ञान आंख खुलने पर—जागने पर होता है इसीप्रकार परमात्माके सच्चे स्वरूपमें जागने पर यह सृष्टि भी नहीं रहती। यदि कहीं रहती है ऐसा मानें तो वह महापुरुषोंके कथनानुसार परमात्माके एक जरासे अंशमें और उसीके संकल्पमात्रमें रहती है।

इसलिये आकाशका दृष्टान्त परमात्मामें पूर्णरूपसे नहीं घटता। इतने ही अंशमें घटता है कि, मनुष्यकी दृष्टिमें जैसे आकाश निराकार है, ब्रह्म वास्तवमें वैसे ही निराकार है, मनुष्यकी दृष्टिमें जैसे आकाशकी अनन्तता भासती है, वैसे ही ब्रह्म सत्य अनन्त है। मनुष्यकी दृष्टिसे समझानेके लिये आकाशका उदाहरण है। इन सब वस्तुओंका अभाव होने पर प्राप्त होनेवाली चीज कैसी है, उसका स्वरूप कोई नहीं कह सकता, वह तो अत्यन्त विलक्षण है। सूक्ष्मभावके तत्त्वज्ञ सूक्ष्मदर्शी महात्मागण उसे 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म, कहते हैं। वह अपार है, असीम है, चेतन है, ज्ञाता है, घन है, आनन्दमय है, सुखरूप है, सत् है नित्य है, इस प्रकारके विशेषणोंसे वे उस विलक्षण वस्तुका निर्देश करते हैं। उसकी प्राप्ति हो जानेपर फिर कभी पतन नहीं होता, दुःख, क्लेश, सन्ताप, शोक, अल्पता, विक्षेप, अज्ञान और पाप आदि सब विकारोंकी सदाके लिये आत्यन्तिक निवृत्ति हो जाती है। एक

सत्य, ज्ञान, बोध आनन्दरूप ब्रह्मके बाहुल्यकी जागृति रहती है। यह जागृति भी केवल समझाने के लिये ही है। वास्तवमें तो कुछ कहा नहीं जा सकता।

'अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते'

(गीता १३।१२)

वह आदिरहित परब्रह्म अकथनीय होनेसे न सत् कहा जाता है और न असत् ही कहा जाता है।

यदि ज्ञानका भोक्ता कहें तो कोई भोग नहीं है। यदि ज्ञानरूप या सुखरूप कहें तो कोई भोक्ता नहीं है। भोक्ता, भोग, भोग्य सब कुछ एक ही रह जाता है वह एक ऐसी चीज है जिसमें त्रिपुटी रहती ही नहीं। एक तो यह निराकारके ध्यान की विधि है।

ध्यानकी दूसरी विधि

एकान्त स्थानमें बैठकर आंखें मूंदकर ऐसी भावना करे कि, मानो सत् चित् आनन्दघन रूपी समुद्रकी अत्यन्त बाढ़ आ गयी है और मैं उसमें गहरा डूबा हुआ हूं। अनन्त-विज्ञानानन्दघन समुद्रमें निमग्न हूं। समस्त संसार परमात्माके संकल्पमें था, उसने संकल्प त्याग दिया इससे मेरे सिवाय सारे संसारका अभाव होकर, सर्वत्र एक सच्चिदानन्दघन परमात्मा ही रह गये। मैं परमात्माका ध्यान करता हूं तो परमात्माके संकल्पमें मैं हूं, मेरे सिवाय और सबका अभाव हो गया। जब

परमात्मा मेरा संकल्प छोड़ देंगे, तब मैं भी नहीं रहूंगा, केवल परमात्मा ही रह जायंगे। यदि परमात्मा मेरा संकल्प त्याग न कर, मुझे स्मरण रक्खें तो भी बड़े आनन्दकी बात है। इस-प्रकार भेदसहित निराकारकी उपासना करे।

इसमें साधनकालमें भेद है और सिद्धकालमें अभेद है परमात्माने संकल्प छोड़ दिया, बस एक परमात्मा ही रह गये। एक युक्ति यह है इसके सिवाय निराकारके ध्यानकी और भी कई युक्तियां हैं उनमेंसे दो युक्तियां कल्याणके वर्ष २ अङ्क २ में सच्चे सुखकी प्राप्तिके उपाय शीर्षक लेखमें बतलाई गई हैं, वहां देखनी चाहिये। कहनेका अभिप्राय यह है कि निराकारका ध्यान दो प्रकारसे होता है। भेदसे और अभेदसे, दोनोंका फल एक अभेद परमात्माकी प्राप्ति ही है। जो लोग जीवको सदा अल्प मानकर परमात्मासे कभी उसका अभेद नहीं मानते, उनकी मुक्ति भी अल्प होती है सदाके लिये वे मुक्त नहीं होते, उन्हें प्रलयकालके बाद वापस लौटना ही पड़ता है, इस मुक्तिवादसे वे ब्रह्मको प्राप्त होकरके भी अलग रह जाते हैं।

अब साकारके ध्यानके सम्बन्धमें कुछ कहा जाता है। साकारकी उपासनाके फल दोनों प्रकारके होते हैं। साधक यदि सद्योमुक्ति चाहता है, शुद्ध ब्रह्ममें एकरूपसे मिलना चाहता है तो उसमें मिल जाता है उसकी सद्योमुक्ति हो जाती है। परन्तु यदि वह ऐसी इच्छा करता है कि मैं दास, सेवक या सखा बनकर भगवान्‌के समीप निवासकर प्रेमानन्दका भोग करूं या

अलग रहकर संसारमें भगवत्प्रेम-प्रचाररूप परम सेवा करूं तो उसको सालोक्य, सारूप्य, सामीप्य, सायुज्य आदि मुक्तियोंमेंसे यथारुचि कोई सी मुक्ति मिल जाती है और वह मृत्युके बाद भगवान्‌के परम नित्यधाममें चला जाता है। महाप्रलयतक नित्यधाममें रहकर अन्तमें परमात्मामें मिल जाता है या संसारका उद्धार करनेके लिये कारक पुरुष बनकर जन्म भी ले सकता है परन्तु जन्म लेनेपर भी वह किसी फंसावटमें नहीं फंसता। माया उसे किंचित् भी दुःख कष्ट नहीं पहुंचा सकती, वह नित्य मुक्त ही रहता है। जिस नित्यधाममें ऐसा साधक जाता है वह परमधाम सर्वोपरि है सबसे श्रेष्ठ है। उससे परे एक सच्चिदानन्दघन निराकार शुद्ध ब्रह्मके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। वह सदासे है, सब लोक नाश होनेपर भी वह बना रहता है। उसका स्वरूप कैसा है इस बातको वही जानता है जो वहां पहुंच जाता है। वहां जानेपर सारी भूलें मिट जाती हैं। उसके सम्बन्धकी सम्पूर्ण भिन्न भिन्न कल्पनाएं वहां पहुंचनेपर एक यथार्थ सत्यस्वरूपमें परिणत हो जाती हैं। महात्मागण कहते हैं कि वहां पहुंचे हुए भक्तोंको प्रायः वह सब शक्तियां और सिद्धियां प्राप्त होती हैं जो भगवान्‌में हैं परन्तु वे भक्त भगवान्‌के सृष्टिकार्यके विरुद्ध उनको उपयोग कभी नहीं करते। उस महामहिम प्रभुके दास, सखा या सेवक बनकर जो उस परमधाममें सदा समीप निवास करते हैं वे सर्वदा उसकी आज्ञामें ही चलते हैं। गीताके अ० ८। २४ का श्लोक इस परम-

धाममें जानेवाले साधकके लिये ही है। बृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद्में भी इस अर्चिमार्गका विस्तृत वर्णन है। इस नित्यधामको ही सम्भवत. भगवान् कृष्णके उपासक गोलोक, भगवान् रामके उपासक साकेतलोक कहते हैं। वेदमें इसीको सत्यलोक और ब्रह्मलोक कहा है। (वह ब्रह्मलोक नहीं जिसमें ब्रह्माजी निवास करते हैं जिसका वर्णन गीता अध्याय ८ के १६ वें श्लोकके पूर्वार्धमें है)। भगवान् साकार रूपसे अपने इसी नित्यधाममें विराजते हैं। साकार रूप मानकर नित्यपरमधाम न मानना बड़ी भूलकी बात है।

भक्तोंके लिये भगवान् साकार कैसे बनते हैं?

परमात्मा सत् चित् आनन्दघन नित्य अपाररूपसे सभी जगह परिपूर्ण हैं। उदाहरणके लिये अग्निका नाम लिया जा सकता है। अग्नि निराकाररूपसे सभी स्थानोंमें व्याप्त है, प्रकट करनेकी सामग्री एकत्र करके साधन करनेसे ही वह प्रकट हो जाती है। प्रकट होनेपर उसका व्यक्तरूप उतना ही लम्बा चौड़ा दीख पड़ता है। जितना लकड़ी आदि पदार्थका होता है। इसी प्रकार गुप्तरूपसे सर्वत्र व्यापक अदृश्य सूक्ष्म निराकार परमात्मा भी भक्तकी इच्छानुसार साकार रूपमें प्रकट होते हैं। वास्तवमें अग्निकी व्यापकताका उदाहरण भी एकदेशीय है क्योंकि जहां केवल आकाश या वायु तत्त्व है वहां अग्नि नहीं है- परन्तु परमात्मा तो सब जगह परिपूर्ण है, परमात्माकी

व्यापकता सबसे श्रेष्ठ और विलक्षण है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां परमात्मा न हो और संसारमें ऐसी भी कोई जगह नहीं कि जहां परमात्माकी माया न हो। जहां देशकाल है वहीं माया है। मायारूप सामग्रीको लेकर परमात्मा चाहे जहां प्रकट हो सकते हैं। जहां जल है और शीतलता है वहीं बर्फ जम सकती है। जहां मिट्टी और कुम्हार है वहीं घड़ा बन सकता है। जल और मिट्टी तो शायद सब जगह न भी मिले परन्तु परमात्मा और उनकी माया तो संसारमें सभी जगह मिलती है ऐसी स्थितिमें उनके प्रकट होनेमें कठिनता ही क्या है? भक्तका प्रेम चाहिये।

'हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेमतें प्रकट होहिं मैं जाना॥'

निराकारकी व्यापकताका विचार तो सभी कर सकते हैं परन्तु साकाररूपसे तो भगवान् केवल भक्तको ही दीखते हैं। वे सर्वशक्तिमान् हैं। चाहे जैसे कर सकते हैं। एकको, अनेकको या सबको एक साथ दर्शन दे सकते हैं। उनकी इच्छा है। अवश्य ही वह इच्छा लड़कोंके खेलकी तरह दोषयुक्त नहीं होती है। उनकी इच्छा विशुद्ध होती है। भक्तकी इच्छा भी भगवान्के भावानुसार ही होती है। भगवान्ने कहा है कि मैं भक्तके हृदयमें रहता हूं। बात ठीक है। जैसे हम सबके शरीरमें निराकाररूपसे अग्नि स्थित है उसी प्रकार भगवान् भी निराकार सत् चित् आनन्दघनरूपसे सभीके हृदयमें

स्थित हैं परन्तु भक्तोंका हृदय शुद्ध होनेसे उसमें वे प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं, यही भक्त हृदयकी विशेषता है। सूर्यका प्रतिविम्ब काठ, पत्थर और दर्पण पर समान ही पड़ता है परन्तु स्वच्छ दर्पणमें तो वह दीखता है। काठ, पत्थरमें नहीं दीखता। इसी प्रकार भगवान् सबके हृदयमें रहनेपर भी अभक्तोंके काष्ठ सदृश अशुद्ध हृदयमें दिखलायी नहीं देते और भक्तोंके स्वच्छ दर्पण सदृश शुद्ध हृदयमें प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं। भक्त ध्यानमें उन्हें जैसा समझता है वैसे ही वे उसके हृदयमें बसते हैं।

महात्मालोग कहा करते हैं कि जहां कीर्तन होता है वहां भगवान् स्वयं साकाररूपसे उपस्थित रहते हैं कीर्तन करते हुए भक्तको साकाररूपमें दीखते भी हैं यह नहीं समझना चाहिये कि यह केवल भक्तकी भावना ही है। वास्तवमें उसे सत्यरूपसे ही दीखते हैं। केवल प्रतीत होनेवाला तो मायाका कार्य है। भगवान् तो मायाशक्तिके कारण हैं। महापुरुषोंकी यह मान्यता सत्य है कि—

मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

यह हो सकता है कि भगवान् साकाररूपसे कीर्तनमें रह कर भी किसीको न दीखें परन्तु वे कीर्तनमें स्वयं रहते हैं इस बातपर विश्वास करना ही श्रेयस्कर है।

जब भगवान् चाहे जहां, जिस रूपमें भक्तकी इच्छानुसार प्रकट हो सकते हैं तब भक्त अपने भगवान्‌का किसी भी रूपमें

ध्यान करे, फल एक ही होता है, मोरमुकुटधारी श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करे या धनुषबाणधारी मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका करे। शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी भगवान् श्रीविष्णुका ध्यान करे या विश्वरूप विराट परमात्माका। बात एक ही है। जिसरूपका ध्यान करे उसीको पूर्ण मानकर करना चाहिये। इसी प्रकार जप भी अपनी रुचिके अनुसार ॐ, राम, कृष्ण, हरि, नारायण शिव आदि किसी भी भगवन्नाम-का करे, सबका फल एक ही है। सगुणके कुछ ध्यानकी विधि 'प्रेमभक्ति प्रकाश' नामक कल्याणमें प्रकाशित लेखोंमें और 'सच्चे सुखकी प्राप्तिके उपाय'* शीर्षक कल्याणके दूसरे अङ्कमें प्रकाशित लेखमें प्रकाशित हो चुकी है। वहां देख लेनी चाहिये।

अब यहां भगवान्के विश्वरूपके सम्बन्धमें कुछ कहना है। भगवान्ने अर्जुनको जो रूप दिखलाया था वह भी विश्वरूप था और वेदवर्णित भूर्भुवः स्वः रूप यह ब्रह्माण्ड भी भगवान्का विश्वरूप है। दोनों एक ही बात है। सारा विश्व ही भगवान्का स्वरूप है। स्थावर जंगम सबमें साक्षात् परमात्मा विराजमान है। समस्त विश्वको परमात्माका स्वरूप मानकर उसका सत्कार और सेवा करना ही विश्वरूप परमात्माका सत्कार और सेवा करना है। विश्वमें जो दोष या विकार हैं वह सब परमात्माके स्वरूपमें नहीं हैं। ये सब बाजीगरकी लीलाके

---

* 'प्रेमभक्तिप्रकाश' और 'सच्चे सुखकी प्राप्तिके उपाय' नामक दोनों लेख पुस्तकाकार गीता प्रेससे मिल सकते हैं।

समान क्रीड़ामात्र हैं। नामरूप सब खेल है। भगवान् तो सदा अपने ही स्वरूपमें स्थित हैं। निराकाररूपसे तो परमात्मा वर्फमें जलकी भांति सर्वत्र परिपूर्ण हैं, वर्फमें जलसे भिन्न अन्य कोई वस्तु ही नहीं है। जलकी जगह वर्फका पिण्ड दीखता है वास्तवमें कुछ है नहीं, इसीप्रकार उस शुद्ध ब्रह्ममें यह संसार दीखता है वस्तुतः है नहीं।

सगुणरूपसे अग्निकी तरह अव्यक्त होकर व्यापक है, सो चाहे जब साकाररूपमें प्रकट हो सकता है, यही बात ऊपर कही गयी है, इसी व्यापक परमात्माको विष्णु कहते हैं, विष्णु शब्दका अर्थ ही व्यापक होता है।

भगवान् गुणातीत हैं, बुरे भले सभी गुणोंसे युक्त हैं, केवल सद्गुण सम्पन्न हैं।

भगवान्‌में कोई भी गुण नहीं, वे गुणातीत हैं, बुरे भले सभी गुण उनमें हैं, और उनमें केवल सद्गुण हैं दुर्गुण हैं ही नहीं। ये तीनों ही बातें भगवान्‌के लिये कही जा सकती हैं, इस विषयको कुछ समझना चाहिये।

शुद्ध ब्रह्म निराकार चेतन विज्ञानानन्दघन सर्वव्यापी परमात्माका वास्तविकरूप सम्पूर्ण गुणोंसे सर्वथा अतीत है। जगत्‌के सारे गुण अवगुण सत् रज और तमसे बनते हैं, सत्, रज, तम तीनोंगुण मायाके अन्तर्गत हैं, इसीसे उसका नाम त्रिगुणमयी माया है। इनमें सत्त्व उत्तम है, रज मध्यम है और

तम अधम है। परमात्मा इस मायासे अत्यन्त विलक्षण, सर्वथा अतीत और गुणरहित है इसीसे उसका नाम शुद्ध है। अतएव वह गुणातीत है।

माया वास्तवमें है तो नहीं, यदि कहीं मानी जाय तो वह भी कल्पनामात्र है। यह मायाकी कल्पना परमात्माके एक अंशमें है। गुण अवगुण सब मायामें हैं। इस न्यायसे, सत्य, दया, त्याग, विचार और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि गुण और अवगुणोंसे युक्त यह सम्पूर्ण संसार उस परमात्मामें ही अध्यारोपित है। इससे सभी सद्गुण और दुर्गुण उसीमें आरोपित माने जा सकते हैं। इस स्थितिमें वह बुरे भले सभी गुणोंसे युक्त कहा जा सकता है।

यह ब्रह्माण्ड जिसके अन्तर्गत है वह मायाविशिष्ट ब्रह्म सृष्टिकर्ता ईश्वर शुद्धब्रह्मसे भिन्न नहीं है, वह मायाको अपने अधीन करके प्रादुर्भूत होता है, समय समयपर अवतार धारण करता है इसीसे उसे मायाविशिष्ट कहते हैं। गीतामें कहा है।—

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥
(गीता ४। ६)

जैसे अवतार होते हैं वैसे ही सृष्टिकी आदिमें भी मायाको अपने अधीन करके ही भगवान् प्रकट होते हैं।

इन्हींका नाम विष्णु है, ये आदि पुरुष विष्णु सर्व सत्त्वगुण सम्पन्न हैं। सतोगुणकी मूर्ति हैं। सात्त्विक, तेज, प्रभाव, सामर्थ्य, विभूति आदिसे विभूषित हैं। दैवीसम्पदाके गुण ही सत्त्वगुण हैं। शुद्ध सत्त्व ही उनका स्वरूप है। दुर्गुण तो रज और तममें रहते हैं, प्रेम सादृश्यता और समानतामें होता है इसीसे जिस भक्तमें दैवीसम्पत्तिके गुण होते हैं वही भगवान्‌के दर्शनका उपयुक्त पात्र समझा जाता है। मायाविशिष्ट सगुण भगवान् मायाको साथ लेकर समय समयपर अवतार धारण किया करते हैं। वे सर्वगुणसम्पन्न हैं। शुद्ध, स्वतन्त्र, प्रभु और सर्वशक्तिमान् हैं। ऐसी कोई भी बात नहीं जो वे नहीं कर सकें। इसीलिये, यद्यपि उस शुद्ध सत्त्वगुणरूप सगुण साकार परमात्मामें रज और तम वास्तवमें नहीं रहते तथापि वह रज तमका कार्य कर सकता है भगवान् विष्णु दुष्टदलनरूप हिंसात्मक कार्य करते हुए दीख पड़ते हैं। मानवदृष्टिसे उनमें हिंसा या तमकी प्रतीति होती है परन्तु वस्तुतः उनमें यह बात नहीं है। न्यायकारी होनेके कारण वे यथावश्यक कार्य करते हैं। राजा जनक मुक्त पुरुष थे, परम सात्त्विक थे परन्तु राजा होनेके कारण न्याय करना उनका काम था। चोरोंको वे दण्ड भी दिया करते थे। इसमें कोई दोषकी बात भी नहीं। माता अपने प्यारे बच्चेको शिक्षा देनेके लिये धमकाती और किसी समय आवश्यक समझकर हितभरे हृदयसे एक आध थप्पड़ भी जमा देती है परन्तु ऐसा करनेमें उसकी दया ही भरी रहती

है। इसी प्रकार दयानिधि न्यायकारी भगवान्‌का दण्ड विधान भी दयासे युक्त ही होता है। भगवान्‌ने कहा है—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

धर्मयुक्त काम मैं हूं, परन्तु पापयुक्त नहीं। भगवान् सत् हैं सात्त्विक हैं शुद्ध सत्त्व हैं। वे मायाके शुद्धसत्त्व विद्यासे सम्पन्न हैं। जीव अविद्यासम्पन्न है। विद्यामें ज्ञान है, प्रकाश है, वहां अवगुण या अन्धकार ठहर ही कैसे सकता है? अवगुण तो अविद्यामें रहते हैं। इस न्यायसे भगवान् केवल सद्‌गुण सम्पन्न हैं।

ऊपरके विवेचनसे यह सिद्ध हो गया कि परमात्मा गुणातीत, गुणागुणयुक्त और केवल सत्त्वगुणसम्पन्न कहे जा सकते हैं।

भगवान्‌का स्वरूप और निराकार साकारकी एकता।

शरीरके तीन भेद हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण जो दीख पड़ता है सो स्थूल है, जो मरनेपर साथ जाता है वह सूक्ष्म है और जो मायामें लय हो जाता है वह कारण है। शरीरके ये तीनों भेद नित्य भी देखे जाते हैं। जाग्रतमें स्थूल शरीर काम करता है। स्वप्नमें सूक्ष्म और सुषुप्तिमें कारण रहता है। इसी प्रकार परमात्माके भी तीन स्वरूप कहे जा सकते हैं महाप्रलयमें रहनेवाला परमात्माका कारण स्वरूप है, सारा विश्व उसीमें लय होकर रहता है, उस समय केवल परमेश्वर और उनकी प्रकृति रहते हैं सारे जीव प्रकृतिके अन्दर लय हो जाते हैं। जीवमें

भी प्रकृति पुरुष दोनोंका अंश है। चेतनता परमात्माका अंश है और अज्ञान प्रकृतिका। मायाकी उपाधिके कारण महा-प्रलयमें भी जीव मुक्त नहीं होते। उसके बाद सृष्टिकी आदिमें फिर सोकर जाग उठनेके समान अपने अपने कर्मफलानुरूप नानारूपोंमें जाग उठते हैं। इसप्रकार महाप्रलयमें परमात्माका रूप कारण कहा जा सकता है।

परमात्माका सूक्ष्मरूप सब जगह रहता है, इसीका नाम आदि पुरुष है, सृष्टिका आदिकारण यही है। इसीका नाम विराट विश्वरूप है।

परमात्मा स्थूलरूपसे शङ्ख चक्र गदा पद्मधारी भगवान् विष्णु हैं जो सदा नित्यधाममें विराजते हैं।

भक्तकी भावनाके अनुसार ही भगवान् बन जाते हैं। यह समस्त ब्रह्माण्ड परमात्माका शरीर है, इसीके अन्दर अपना शरीर है, इस न्यायसे हम सब भी परमात्माके पेटमें हैं।

एक तत्त्वकी बात और समझनी चाहिये। जब आकाश निर्मल होता है, सूर्य उगे हुए होते हैं, उस समय सूर्यके और अपने बीचमें आकाशमें कोई चीज नहीं दीखती परन्तु वहां जल रहता है। यह मानना पड़ेगा कि सूर्य और अपनेबीचमें जल भरा हुआ है परन्तु वह दीखता नहीं क्योंकि वह सूक्ष्म और परमाणुरूपमें रहता है, जब उसमें घनता आती है तब क्रमशः उसका रूप स्थूल होकर व्यक्त होने लगता है। सूर्यदेव ~~एक अग्निका पिण्ड है~~ अग्निके तापसे भाप बनती है, जब

भाप घन होती है तब उसके बादल बन जाते हैं, फिर उनमें जलका संचार होता है, पानीके बादल पहाड़ परसे चले जाते हों उस समय कोई वहां चला जाय तो वर्षा न होने पर भी उसके कपड़े भींग जाते हैं। बादलमें जलकी घनता होनेपर बूंदें बन जाती हैं और घनता होती है तो वही ओले बनकर बरसने लगता है। फिर वह ओले या बर्फ गर्मी पहुंचते ही गलकर पानी हो जाते हैं, और अधिक गर्मी होनेपर उसीकी फिर भाप बन जाती है, भाप आकाशमें उड़कर अदृश्य हो जाती है अन्तमें जल फिर उसी परमाणु अव्यक्त रूपमें परिणत हो जाता है। इस परमाणुरूपमें स्थित जलको अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुको सहस्रगुण स्थूल दिखलानेवाले यन्त्रसे भी कोई नहीं देख सकता। पर जल रहता अवश्य है। न रहता तो आता कहांसे?

इस दृष्टान्तके अनुसार परमात्माका स्वरूप समझना चाहिये। श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

> अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते।
> भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः॥
> अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाधिदैवतम्।
> अधियज्ञोऽहमेवात्र देहे देहभृतां वर॥
>
> (अ० ८ श्लोक ३-४)

अर्जुनके सात प्रश्नोंमें छः प्रश्न ये थे कि ब्रह्म क्या है, कर्म क्या है, अध्यात्म क्या है, अधिभूत क्या है, अधिदैव

क्या है, और अधियज्ञ क्या है? भगवान्‌ने उपर्युक्त श्लोकोंमें इनका यह उत्तर दिया कि, अक्षर ब्रह्म है, स्वभाव अध्यात्म है, शास्त्रोक्त त्याग कर्म है, नाश होनेवाले पदार्थ अधिभूत हैं, समष्टिप्राण रूपसे हिरण्यगर्भ द्वितीय पुरुष अधिदैव है, और निराकार ब्रह्म व्यापक विष्णु अधियज्ञ है।

उपर्युक्त दृष्टान्तसे इसका दार्ष्टान्त इस प्रकार समझा जा सकता है।

(१) परमाणुरूप जलके स्थानमें—

शुद्ध सच्चिदानन्दघन गुणातीत परमात्मा जिसमें यह संसार न तो कभी हुआ और न है, जो केवल अतीत, परम, अक्षर है।

(२) भापरूप जल—

वही शुद्ध ब्रह्म अधियज्ञ निराकाररूपसे व्याप्त रहनेवाला मायाविशिष्ट ईश्वर।

(३) बादल—

अधिदैव, सबका प्राणरूप हिरण्यगर्भ ब्रह्मा। सत्रह तत्त्वोंके समूहको सूक्ष्म कहते हैं इनमें प्राण प्रधान है। सबके प्राण मिलकर समष्टिप्राण हो जाते हैं, यह समष्टिप्राण प्रलयमें भी रहता है। महाप्रलयमें नहीं।

(४) जलकी लाखों करोड़ों बूंदें—

जगत्‌के सब जीव।

(५) वर्षा–

जीवोंकी क्रिया।

(६) जलके ओले या बरफ–

पञ्चभूतोंकी अत्यन्त स्थूल सृष्टि।

इस सृष्टिका स्वरूप इतना स्थूल और विनाशशील है कि जरा सा ताप लगते ही क्षणभरमें ओलोंके गलकर पानी हो जानेके सदृश तुरन्त गल जाता है। यहां ताप ज्ञानाग्निरूप वह प्रकाश या गर्मी है जिसके पैदा होते ही स्थूल सृष्टिरूपी ओले तुरन्त गल जाते हैं।

अज्ञान ही सरदी है। जितना अज्ञान होता है उतनी स्थूलता होती है और जितना ज्ञान होता है उतनी ही सूक्ष्मता होती है। जो पदार्थ जितना भारी होता है, वह उतना ही नीचे गिरता है, जितना हलका होता है उतना ही ऊपरको उठता है। अज्ञान ही बोझा है, जलके अत्यन्त स्थूल होनेपर जब वह बरफ बन जाता है तभी उसे नीचे गिरना पड़ता है इसी प्रकार अज्ञानके बोझसे स्थूल हो जानेपर जीवको गिरना पड़ता है।

ज्ञानरूपी तापके प्राप्त होते ही संसारका बोझ उतर जाता है और जैसे तापसे गलकर जल बननेपर और भी ताप प्राप्त होनेसे वह जल धूआं या भाप होकर ऊपर उड़ जाता है, वैसे ही जीव भी ऊपर उठ जाता है।

जीवात्मा खास ईश्वरका स्वरूप है, परन्तु जड़ता या

अज्ञानसे जब यह स्थूल हो जाता है तभी इसका पतन होता है। अज्ञान ही अधःपतन है और ज्ञान ही उत्थान है। एकबार शेष सीमा तक उठनेपर फिर नहीं गिरता। सब कुछ परमेश्वर ही हो जाता है वास्तवमें तत्त्वसे है तो एक ही। परमाणु, भाप, बादल, बूंद, ओले सब जल ही तो हैं।

इस न्यायसे सभी वस्तुएँ एक ही परमात्मतत्त्व है इसलिये भगवान् चाहे जैसे, चाहे जब, चाहे जहां, चाहे जिसरूपसे प्रकट हो जाते हैं। इस बातका ज्ञान होनेपर साधकको सब जगह ईश्वर ही दीखते हैं। जलका तत्त्व समझ लेनेपर सब जगह जल ही दीखता है वही परमाणुमें और वही ओलोंमें अत्यन्त सूक्ष्ममें भी वही और अत्यन्त स्थूलमें भी वही। इसी प्रकार सूक्ष्म और स्थूलमें वही एक परमात्मा है। '**अणोरणीयान् महतो महीयान्**।' यही निराकार साकारकी एकरूपता है।

अज्ञानसे अहंकार बढ़ता है जितना अहंकार अधिक होता है उतना ही वह सांसारिक वस्तुओंको अधिक ग्रहण करता है जितना सांसारिक बोझ अधिक होगा उतना ही वह नीचे जायगा। तीन गुण हैं इनमें तमोगुण सबसे भारी है इसीसे तमोगुणी पुरुष नीचे जाता है, रजोगुण समान है इससे रजोगुणी बीचमें मनुष्यादिमें रह जाता है, सत्त्वगुण हलका है, इससे सतोगुणी परमात्माकी ओर ऊपरको उठता है—

'ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था'
'मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः'
'अधोगच्छन्ति तामसाः'

हलकी चीज ऊपर तैरती है भारी डूब जाती है। आसुरी सम्पदा तमोगुणका स्वरूप है इसलिये वह नीचे ले जाती है। सतोगुण हलका होनेसे ऊपरको उठाता है। दैवीसम्पदा ही सत्त्वगुण है यही ईश्वरकी सम्पत्ति है यह सम्पत्ति ज्यों ज्यों बढ़ती है त्यों ही त्यों साधक ऊपर उठता है, याने परमात्माके समीप पहुंचता है।

इस तरहसे स्थूल और सूक्ष्ममें उस एकही परमात्माको व्यापक समझना चाहिये। परमात्मा व्यापकरूपसे सबको देखते और जानते हैं।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(श्रीमद्भगवद्गीता अ० १३।१३)

वह ज्ञेय कैसा है? सब ओरसे हाथ पैरवाला सब ओर नेत्र, सिर तथा मुखवाला एवं सब ओरसे कानवाला है। ऐसा कोई स्थान नहीं जहां वह न हो, ऐसा कोई शब्द नहीं जिसे वह न सुनता हो, ऐसा कोई दृश्य नहीं जिसे वह न देखता हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वह ग्रहण न करता हो और ऐसी कोई जगह नहीं जहां वह न पहुंचता हो।

हम यहां प्रसाद लगाते हैं तो वह तुरन्त खाता है, हम यहां स्तुति करते हैं तो वह सुनता है। हमारी प्रत्येक क्रियाको वह देखता है परन्तु हम उसे नहीं देख सकते। इसपर यह प्रश्न होता है कि एक ही पुरुषकी सब जगह सब इन्द्रियां कैसे रहती हैं? आंख है वहां नाक कैसे हो सकती है? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि यह बात तो ठीक है परन्तु परमात्मा इससे विलक्षण है वह कुछ अलौकिक शक्ति है उसमें सब कुछ सम्भव है। मान लीजिये, एक सोनेका ढेला है, उसमें कड़े बाजूबन्द कण्ठी आदि सभी गहने सभी जगह हैं। जहां इच्छा हो वहींसे सब चीजें मिल सकती हैं इसी प्रकार वह एक ऐसी वस्तु है जिसमें सब जगह सभी वस्तुएं व्यापक हैं। सभी उसमेंसे निकल सकती हैं वह सब जगहकी और सबकी बातोंको एक साथ सुन सकता है और सबको एक साथ देख सकता है।

स्वप्नमें आंख, कान, नाक, वगैरह न होनेपर भी अन्तःकरण स्वयं सब क्रियाओंको आप ही करता और आप ही देखता सुनता है। द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सभी कुछ बन जाता है इसीप्रकार ईश्वरीय शक्ति भी बड़ी विलक्षण है वह सब जगह सब कुछ करनेमें सर्वथा समर्थ है। यही तो उसका ईश्वरत्व और विराट स्वरूप है।

साकाररूप उस परमेश्वरका शरीर है समस्त ब्रह्माण्ड उसका शरीर है जैसे बर्फ जलका शरीर है परन्तु उससे अलग

नहीं है। इसी प्रकार क्या संसार भी वस्तुतः ऐसा ही है? क्या शरीर भी परमात्मा है?

इसके उत्तरमें यही कहना पड़ता है कि है भी और नहीं भी! इस शरीरकी कोई सेवा करता या आराम पहुंचाता है तब मैं उसे अपनी सेवा और अपने को आराम पहुंचता है ऐसा मानता हूं परन्तु वस्तुतः मैं शरीर नहीं हूं मैं आत्मा हूं, पर जबतक मैं इस साढ़े तीन हाथकी देहको 'मैं' मानता हूं तब तक वह मैं हूं। इस स्थितिमें ब्रह्माण्ड ईश्वर है, सबको उसकी सेवा करनी चाहिये, उसकी सेवा ही ईश्वरकी सेवा है संसारको सुख पहुंचाना ही परमात्माको सुख पहुंचाना है और जब मैं यह शरीर नहीं हूं तब यह ब्रह्माण्ड रूपी शरीर भी ईश्वर नहीं है यह अपना शरीर है तभीतक वह उसका शरीर है। अपने सब उसके अंश हैं तो वह अंशी है, वास्तवमें अन्तमें हम आत्मा ही ठहरते हैं शरीर नहीं। परन्तु जबतक ऐसा नहीं है तबतक इसी चालसे चलना चाहिये। यथार्थ ज्ञान होनेपर तो एक शुद्ध ब्रह्म ही रह जायगा।

इस न्यायसे निराकार साकार सब एक ही वस्तु है। जगत् परमेश्वरमें अध्यारोपित मात्र है महात्मा लोग ऐसा ही कहते हैं जैसे रज्जुमें सर्पकी प्रतीति मात्र है वास्तवमें है नहीं। स्वप्नका संसार अपनेमें प्रतीत होता है मृगतृष्णाका जल या आकाशमें तिरमिरे प्रतीत होते हैं इसी प्रकार परमात्मामें संसारकी

प्रतीति होती है इस बातको महात्मा पुरुष ही जानते हैं। जागनेपर जागनेवालेको ही स्वप्नके संसारकी असारताका यथार्थ ज्ञान होता है। जबतक यह बात जाननेमें नहीं आती तबतक उपाय करना चाहिये। उपाय यह है—

निराकार और साकार किसी भी रूपका ध्यान करनेपर जो एक ही परमवस्तु उपलब्ध होती है उस परमेश्वरकी सब प्रकारसे शरण होकर इन्द्रिय या शरीरसे उसकी सेवा करनी, मनसे उसे स्मरण करना, श्वाससे उसका नामोच्चारण करना, कानोंसे उसका प्रभाव सुनना और शरीरसे उसकी मंगलमयी इच्छानुसार चलना यही उसकी सेवा है, यही असली भक्ति है और इसीसे आत्माका शीघ्र कल्याण हो सकता है!

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः